काव्य – लक्षण

प्राचीन काल से ही विद्वानों ने काव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं। सभी विद्वानों और आचार्यों द्वारा दिये गये काव्यलक्षणों में न्यूनाधिक अंतर है। भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा में संस्कृत आचार्यों की बहुत लंबी और अविच्छिन्न परंपरा है। संस्कृत के प्रमुख काव्यलक्षणकार हैं – अग्निपुराणकार, भामह, दंडी, रुद्रट, वामन, राजशेखर, कुन्तक, भोज, मम्मट, जयदेव, विश्वनाथ, गोविंद ठाकुर और पंडितराज जगन्नाथ।

सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने अग्निपुराण में काव्य का लक्षण दिया है –

“संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम्।”

अर्थात अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रकट करने वाली पदावली काव्य कहलाती है। यह भी कहा जा सकता है कि वक्तव्य विषय को सुंदर ढंग से प्रतिपादित करने वाला नपा – तुला पद – समूहात्मक वाक्य काव्य है। इस काव्य लक्षण में संक्षेपाद् से तात्पर्य यह है कि काव्य में व्यर्थ के पदों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

अलंकारवादी आचार्य भामह का काल छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। इन्होंने काव्य – लक्षण को इस प्रकार व्यक्त किया है -

“शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्”

अर्थात शब्द और अर्थ का सहित भाव ही काव्य है।

दूसरे अलंकारवादी आचार्य जिनका समय सातवीं शताब्दी है ने अभीष्ट वर्णन करने के लिए अभिप्रेत अर्थ से युक्त शब्द को काव्य का शरीर कहा है और इष्ट अर्थ से युक्त पद – समुदाय को काव्य –

“शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।“

आचार्य दंडी के इस लक्षण को मौलिक मानने से अनेक विद्वानों ने इंकार किया है, यदि अग्निपुराण पूर्ववर्ती रचना है तो इन्होंने अग्निपुराणकार के दिए लक्षण को ही संशोधित कर दिया है। इसमें संक्षेपाद् और वाक्य इन दो पदों को हटा दिया गया है। इन पदों को हटा देने से अर्थ में परिवर्तन नहीं हुआ है तथा काव्य – लक्षण के सूत्र में सरलता आ गई है।

अलंकारवादी आचार्य रुद्रट का काल नौवीं शताब्दी का आरंभ है। इन्होंने भी भामह की भाँति शब्द और अर्थ के समन्वय को ही काव्य माना है –

“ननु शब्दार्थौ काव्यम्”

कुछ विद्वानों का कथन है कि शब्द के साथ अर्थ का समन्वय करके रुद्रट ने काव्यलक्षण में महान परिवर्तन उपस्थित किया, परंतु दूसरी ओर अन्य विद्वान यह भी कहते हैं कि यह इनकी मौलिक देन नहीं है, छठी शताब्दी में ही भामह ने सर्वप्रथम शब्द और अर्थ के सहित भाव अर्थात सम्मिलन को काव्य का लक्षण निर्धारित किया था।

रीतिवादी आचार्य वामन का काल भी नौवीं शताब्दी का प्रारंभ माना जाता है, परंतु रुद्रट वामन से पूर्व माने जाते हैं। इन्होंने काव्य में अलंकारों तथा गुणों का योग करके इस दिशा में एक मौलिक योग प्रदान किया है। इनके दिए काव्यलक्षण के अनुसार काव्य शब्द, गुण तथा अलंकारों से सुसंस्कृत शब्दार्थ युगल का वाचक है –

"काव्यशब्दोयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।"

वामन ने काव्य की ग्राह्यता अलंकारों के कारण ही मानी है और अलंकारों को सौन्दर्य के पर्याय के रूप में ग्रहण किया है –

"काव्यं ग्राह्यमलंकरात। सौन्दर्यमलंकारः"

वामन ने बताया है कि दोषों के त्याग और गुण तथा अलंकारों के ग्रहण करने से काव्य में सौंदर्य उत्पन्न होता है।

ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्य आनंदवर्धन का समय भी नौवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने काव्यलक्षण इस प्रकार बताया है –

"ध्वनिशब्दार्थरूप" इस काव्यलक्षण के अनुसार मान्य गुणीभूत व्यंग्य तथा चित्र काव्यशास्त्र की परिधि में नहीं आते, अनेक विद्वानों ने इस काव्यलक्षण को अव्याप्ति दोष ग्रस्त माना है।

'काव्यमीमांसा' के रचयिता राजशेखर का समय नौवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। इनका दिया काव्यलक्षण है –

"शब्दार्थयोर्यथावत्साहभावेन विद्या साहित्यविद्या।"

अर्थात शब्द और अर्थ के सहभाव से समन्वित विद्या साहित्य विद्या कहलाती है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के आचार्य कुंतक का समय ग्यारहवीं शताब्दी का प्रारंभ माना गया है। इन्होंने सुंदर, आह्लादकारी, कवि – व्यापार से युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ को काव्य कहा है –

"शब्दार्थो सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी।

बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाजल्हकारिणी।"

मम्मट का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनका काव्यलक्षण है –

"तददोषो शब्दार्थो सगुणावलंकृति पुनः क्वापि।"

रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने अपना काव्यलक्षण इस प्रकार दिया –

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

रसात्मक वाक्य का अभिप्राय बताते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि रसात्मक वाक्य वह वाक्य है जिसका आत्मतत्व 'रस' होता है।

पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत – काव्यशास्त्र – परंपरा के अंतिम आचार्य हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खंडन किया है। इन्होंने आचार्य विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' का खण्डन करते हुए लिखा है कि यदि रस की काव्य में स्थिति अनिवार्य मान ली जाये तो जिन काव्यों में वस्तुवर्णन अथवा अलंकार – वर्णन ही है, वे काव्य होते हुए भी काव्य की संज्ञा से वंचित हो जाएंगे और इस प्रकार महाकवियों की चिरकाल से आनेवाली व्यावहारिक परंपरा उच्छिन्न हो जायेगी। इन्होंने रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहा है। -

"रमनीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

यहाँ रमणीयार्थ से तात्पर्य उस अर्थ से है जिसके ज्ञान से लोकोत्तर आनंद की उपलब्धि होती है।

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि ने गुनालंकार सहित तथा दोषरहित शब्दार्थ को काव्य की संज्ञा दी है।

भिखारीदास के अनुसार –"अलंकार, रस, ध्वनि तथा गुणों से युक्त शब्दार्थ को ही काव्य कहा है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में –

"कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनंददायी प्रभाव डालती है।"

भरतीय आचार्यों में संस्कृत के विद्वानों से लेकर मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन हिंदी के विद्वानों ने अपने महत्वपूर्ण विचार दिये हैं।